International Journal of Applied Research 2022; 8(10): 279-281

**ISSN Print:** 2394-7500
**ISSN Online:** 2394-5869
**Impact Factor:** 8.4
IJAR 2022; 8(10): 279-281
www.allresearchjournal.com
Received: 23-07-2022
Accepted: 03-09-2022

**डॉ. अर्चना द्विवेदी**
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दिवा, सेठ आनंदराम जयपुरिया कॉलेज, कोलकाता, पश्चिम बंगाल, भारत

**Corresponding Author:**
**डॉ. अर्चना द्विवेदी**
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दिवा, सेठ आनंदराम जयपुरिया कॉलेज, कोलकाता, पश्चिम बंगाल, भारत

# दलित साहित्य : भाषागत वैशिष्ट्य

## डॉ. अर्चना द्विवेदी

### प्रस्तावना

"तुम्हें
मंगल पाण्डे
याद आता है
मातादीन भंगी
या
बिरसा मुंडा याद नहीं
तुम्हें—
झाँसी की रानी भी याद है
लेकिन—
कोरी झलकारी बाई याद नहीं
ज्ञात नहीं
उस वीरांगना की कहानी
हीरा डोम
या
अछूतानन्द का नाम लेते हुए
आती है तुम्हें लाज।
रचते हो झूठा इतिहास
और बर्बरिक महान को
असुर बालक कहकर
करते हो उपहास।"[1]

उपरोक्त पंक्तियों और उनमें व्यक्त विचारों को देखकर दलित साहित्य की भाषा और उसकी यथार्थ चेतना का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। पहली नजर में लगता है कि दलित कविता की भाषा गाली-गलौज की अश्लील भाषा है। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि दलित साहित्य प्रतिरोध और बहुत हद तक प्रतिक्रिया का भी साहित्य है। अत, उसमें क्षोभ, पीड़ा और आक्रोश स्वाभाविक है। वस्तुत: जब किसी वर्ग विशेष का कोई व्यक्ति रचना कर्म द्वारा साहित्य जगत में प्रवेश करता है तो वह अकेला नहीं अपितु, अपने परिवेश एवं पारिवारिक-सामाजिक संस्कारों के साथ प्रवेश करता है। यही कारण है कि जब दलित साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य जगत में प्रवेश किया तो उनके साथ ही दलित बस्तियों के परिवेश और माहौल से उपजी भाषा ने भी साहित्य में प्रवेश किया।

दलित साहित्य ने परम्परागत तत्सम प्रधान, संस्कृतनिष्ठ भाषा, काव्यशैली और प्रस्तुतिकरण को नकारकर जनसामान्य के समझने लायक सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। संस्कृत भाषा को दलित साहित्यकारों ने उस ब्राह्मणवादी संस्कृति से जोड़कर देखा जिसने सदियों से उसे ज्ञानार्जन एवं अध्ययन से वंचित रखा तथा इसी आधार पर उसे खारिज किया। उसने जन भाषा का समर्थन करते हुए ऐसी भाषा का इस्तेमाल किया जो दलितों की पीड़ा, अपमान, व्यथा तथा जनसाधारण की आशा-आकांक्षाओं को सही अभिव्यक्ति दे सके। दलित काव्य की भाषा आम बोलचाल तथा जन-जीवन के व्यवहारों के करीब हैं। इसलिए उन्हें अश्लील और वर्जित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि दलित साहित्य कल्पना में नहीं जीता। वह जीवन के कटु अनुभवों की कठोर भूमि पर अवस्थित है। जयप्रकाश कर्दम चली आ रही भाषा छोड़कर 'मुझसे जनभाषा में बतियाओ' का आग्रह करते हैं:

"मेरे दोस्त मेरे लिए
उस भाषा में शुभकामनाएँ मत करो
जो भाषा
कभी मेरी नहीं रही
जिसके लिए रहा मैं सदैव
अंत्यज अस्पृश्य
मुझे नफरत है
उस भाषा के संस्कारों से
उसके शास्त्रीय सरोकारों से।"[2]

भाषा पर परिवेश और संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। जाहिर सी बात है कि दलित लेखकों की भाषा पर भी उनके परिवेश और संस्कृति का प्रभाव होगा। यातनाओं से उपजी आक्रोशपूर्ण भाषा तेज औजार की तरह भीतर तक झकझोर देती है। दलित समाज की बोली के ऐसे अनेक शब्द प्रकट होते हैं जिनसे साहित्य अनभिज्ञ था। यह दलित साहित्य को ताज़गी देता है और भाषा की जड़ता भी तोड़ता है। सच तो यह है कि दलित जीवन का यथार्थ कुछ दूसरा ही होता है। जैसा कि ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं—

"वे (दलित) जिस परिवेश में जीवन जीते हैं, वहाँ गन्दी गलियों में नंग घड़ंग घूमते बच्चे हैं, दूषित वातावरण है जिसे पारंपरिक आलोचक नहीं जानते, उस परिवेश की भाषा को अश्लील कहना पूर्वाग्रह ही कहा जाएगा।"[3]

दलित काव्य में 'सहृदय' और साहित्य संगीत कला विहिन ही साक्षात पशु : पुच्छ विषाण हीन : की शास्त्रीय अवधारणा को सिरे से खारिज करता है। यह साहित्य को कुछ कुलीन और सहृदय लोगों की संपत्ति नहीं मानता। मुख्यधारा का साहित्य जहाँ कुछ गिने चुने 'सहृदय' और महान लोगों का साहित्य है, वहीं दलित साहित्य सर्वहरा और आमजमों का साहित्य है इसलिए इसकी भाषा आम लोगों की बोलचाल की भाषा है। यह व्यक्तिगत नहीं अपितु समूह की पीड़ा और अनुभवों को वाणी देता है।

कविता की भाषा की सपाटबयानी पर ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं—

"दलित जीवन की विसंगतियाँ, उत्पीड़न, शोषण और दमन की अभिव्यक्ति के लिए ऐसी ही सरल, सहज और सटीक भाषा अधिक उपयुक्त है। क्योंकि इसके पाठक कम पढ़े लिखे वर्ग के लोग हैं। इसलिए दलित कविता की भाषा अधिकतर गद्यात्मक ही है जिसमें नकार और विरोध के स्वर मुखर हैं। इनमें आक्रोश और पीड़ा का उभार है

'शब्द ही तो थे
जो मनुस्मृति में लिखे गए
राम राज चला गया
पर शम्बूक की चीख अभी बाकी है
जैसे दलितों की पीठ पर
चोट के निशान
शब्द सिसकते नहीं बोलते हैं
चोट कहते हैं
जैसे दलित से हरिजन
और हरिजन से दलित।'

मोहनदास नैमिशराय की ये पंक्तियाँ आलोचनाशास्त्र के पारंपरिक मानदंडो पर हो सकता है किसी समीक्षक को संतुष्ट न कर पाएँ, लेकिन अभिव्यक्ति के स्तर पर अपनी

संवेदना को झकझोरती है। 'शब्द' की मारक शक्ति से दलित अच्छी तरह परिचित हो चुका है। उसने 'शब्द' के अर्थ को जान लिया है। नैमिशराय की इस कविता में व्यक्तिनिष्ठा नहीं, समूह निष्ठा है जो दलित रचनाकार की सामाजिक प्रतिबद्धता को प्रतिष्ठित करती है।"[4]

दलित साहित्य की भाषा पर गाली-गलौज के आरोप का उत्तर देते हुए प्रखर दलित आलोचक कंवल भारती लिखते हैं कि—

"यह बताओ
बलात्कार की शिकार
तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी?
कैसे होंगे
गुलामी की जिंदगी जीने वाले
तुम्हारे बाप के विचार?
ठाकुर की हवेली में दम तोड़ती
तुम्हारी बहिन के शब्द?
क्या वे सुन्दर होंगे?"[5]

दलित साहित्य की ऐसी भाषा देखकर उसको गाली का साहित्य कह दिया गया है। प्रतिष्ठित आलोचकों के ऐसे मंतव्यों का उत्तर देते हुए कंवल भारती कहते हैं—

"आलोचक अक्सर यह भूल जाते हैं कि दलित लोगों को सवर्ण लोग कैसी-कैसी गालियों से नवाजते हैं, उनके प्रति उनकी कितनी अशिष्ट भाषा होती है? और क्या वे नहीं मानते कि हिन्दू धर्म के शास्त्र दलित-शूद्रों को शिष्ट और संस्कृत भाषा बोलने का निषेध करते हैं।"[6] वे आगे कहते हैं—

"दलित साहित्य गाली साहित्य नहीं है। जिस परिवेश में दलित साँस ले रहा है वे गालियाँ उसी परिवेश में हैं। दलित लेखक उन गालियों को उस परिवेश से कैसे निकाल सकता है? यथार्थ का यथार्थपूर्ण चित्रण उसकी समग्रता में ही हो सकता है।"[7]

गालियों का उपयोग दलित साहित्यकारों ने उनके साथ और पूरे समुदाय के साथ होने वाले अपमानजनक व्यवहार के यथार्थ चित्रण हेतु किया है। सांस्कृतिक महानता, शील एवं श्रेष्ठ साहित्य के नाम पर अक्सर यह कटु सच्चाइयाँ छिपा दी जाती हैं। मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं—

"हिन्दू समाज में आदमी की कीमत उसकी जात से आँकी जाती थी। हमें विशेष तौर पर चमार चूड़े के नाम से संबोधित किया जाता था। पर उनके संबोधन के तौर तरीके और भी घृणास्पद हुआ करते थे। उनके द्वारा कहे गए एक-एक शब्द हमारे शरीर को छीलते थे बीच-बीच में वे गालियाँ भी देते थे।"[8]

दलित कविता की आक्रोशपूर्ण और विरोधजनत भाषिक अभिव्यंजना अर्थपूर्ण है। सामाजिक संदर्भों से जुड़कर वह अपनी अभिव्यक्ति से आंदोलन का आह्वान करती है। भाषा न केवल धारदार है बल्कि वह नदी के तेज बहाव की तरह धाराप्रवाह भी है। उसमें मुक्ति की छटपटाहट है। किन्तु दलित साहित्य की भाषा को केवल नकार और विरोध की भाषा कहना गलत होगा। उसमें परिवर्तन की छटपटाहट और अन्तर्विरोधों की उर्जा भी है। दलित कवि अपनी दुखद स्थितियों में संताप को तो व्यक्त करते ही हैं, इतिहास के काले अध्यायों में ढँकी अपनी अस्मिता की तलाश भी करना चाहते हैं।

"आ, मेरे अज्ञात अनाम पुरखों
तुम्हारे एक मूक शब्द जल रहे हैं
दहकती राख की तरह।
राख जो लागातार काँप रही है
राख से भरी हुई।
मैं जानना चाहता हूँ
तुम्हारे शब्द...
तुम्हारा भय...
जो तमाम हवाओं के बीच भी
जल रहे हैं
दीये की तरह युगों-युगों से।"[9]

## संदर्भ-सूची


1. चौहान सूरजपाल, क्यों विश्वास करूँ?, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 33-34
2. http ://epgp.inflibnet.ac.in
3. वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ.82
4. वही, पृ. 82
5. भारती कंवल, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, बोधिसत्व प्रकाशन, रायपुर, 1996, पृ. 53
6. ठाकुर हरिनारायण, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2010, पृ. 116-17
7. वही, पृ. 117
8. http ://epgp.inflibnet.ac.in
9. वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ.83-84